Journal of Advances and Scholarly Researches in Allied Education
Vol. 16, Issue No. 1, January-2019, ISSN 2230-7540

राजस्थान प्रांत में लोकगायन की ऐतिहासिक विकास यात्रा

Bhavna Vijay Mankar[1]* Dr. Pooja Rathore[2]

[1] Research Scholar

[2] Assistant Professor

सार - राजस्थान का आदिकाल का इतिहास बहुत कुछ अज्ञात है। प्राचीन ग्रंथों में समस्त राजस्थान का कोई भौगोलिक नाम नहीं मिलता। प्राचीनकाल में इसके विभिन्न भूखण्ड अलग-अलग नामों से प्रसिद्ध थे। संगीत का मुख्य प्रयोजन प्रवृत्ति निवृत्ति नहीं अपितु रसास्वादन या "सद्यः परनिवृत्तिः" है। राजस्थान का इतिहास जितना गौरवशाली है, उसी प्रकार राजस्थान का भूगोल भी अति महत्वपूर्ण है। यह भारत का पश्चिमी सरहदी प्रदेश है। स्वतंत्रता से पूर्व, राजस्थान छोटे-बड़े राज्यों में बंटा हुआ था। संगीत के लिये शास्त्र शब्द शासनात् शास्त्रम् को लेकर प्रस्तुत नहीं हुआ है। अपितु शंसनात् शास्त्रम् को लेकर प्रवृत्त हुआ माना जा सकता है। शंासन का अर्थ है किसी गूढ़ तत्वों का शंसन या प्रतिवादन करने वाले गन्थ ही शास्त्र कहलाते हैं। गीतों के समीकरण में कई पक्षों का सम्मिश्रण अपेक्षित होता है। जहाँ गीत के लिये शब्द प्रथम सीढ़ी है तो स्वर दूसरी सीढ़ी। लय तीसरी सीढ़ी है तो ताल चौथी सीढी। शब्द, स्वर, लय एवं ताल के साथ ही अन्य अनेक पहलू भी गीत को समृद्धता प्रदान करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते है,

कुंजीशब्द - लोकगायन, ऐतिहास, स्थिति

-----------------------------------X-----------------------------------

प्रस्तावना

लोकगीतों का स्वरूप

प्रत्येक प्रांत के लोकगीत वहाँ की सामाजिक एवं धार्मिक भावनाओं को उद्घाटित करने वाले होते हैं, अतः यह गीत अत्यन्त ही सरल एवं सामान्य से प्रतीत होते हैं। इन लोकगीतों की कड़ियों में वीर राजपूत राजाओं के गौरवशाली इतिहास, प्रेम-प्रसंग, भौगोलिक परिवेश, सौन्दर्यमय कल्पना के अश जुड़ते रहते हैं। राजस्थान के नाना कंठो और स्वरों में रमकर लोक गीतों का स्वरूप सदैव निखरता रहता है। कभी यह गीत राजघरानों के पेशेवर लोक गायकों द्वारा राजपरिवार के समक्ष प्रस्तुत किये जाते हैं, कभी आम गृहणियाँ घर में हो रहे विवाह जैसे उपलक्षों में इन्हें अपने तरीके से गाती है, तो कभी खेतों में हल चलाता किसान और धान कूटती कोई गरीब महिलाएँ इन लोकगीतों को अपना मन बहलाने के लिये गुनगुनाते हैं। जिससे निःसन्देह यह स्पष्ट होता है कि यहाँ के गीतों में गेयता, मानव अनुभूति की सच्चाई तथा चिरजीवन का रहस्य छिपा हुआ है। राजस्थानी लोकगीतों में मानव जीवन की, उसके उल्लास की, उसकी उमंगों की, करूणा, रूदन एवं उसके समस्त सुख-दुख की कहानी वर्णित होती है।

राजस्थान के लोक गायकों एवं सामंती परम्परावादियों ने यहाँ की स्वरूप रूपी धरोहर को संजोकर रखा है। यहाँ के लोकगीत किसी व्यक्ति विशेष की धरोहर नहीं है। यह तो जनमानस की आत्मा है। इसके स्वरूप में स्वच्छन्दता है क्योंकि यह समाज के सभी वर्ग के व्यक्तियों एवं जातियों की भावनाओं को समाहित किए हुए है और इस स्वच्छंद रूप को चिरायु रखने के लिये आश्रय की आवश्यकता होती है, जो कि राजस्थान के लोक कलाकारों को राजघरानों, जागीरदारों, धनाढ्य व्यापारियों और अब केन्द्रीय एवं राज्य सरकार द्वारा भी प्राप्त होता है। राजस्थानी लोकगीतों का स्वरूप बहुत ही विस्तृत दृष्टिगत होता है, एक ओर जहाँ लोकगीतों में जीवन के प्रमुख संस्कारों, धार्मिक अनुष्ठानों, पर्वोत्सवों, ऋतुओं, व्यवसायों अथवा आजीविका के साधनों और उनसे उत्पन्न मानसिक व भौतिक प्रतिक्रियाओं का चित्रण हुआ है, वहीं दूसरी ओर पारिवारिक सम्बन्धों का स्वरूप एवं दिषा बोध भी इनमें केन्द्रित होता है।

www.ignited.in

1. **प्रथम भागः** यह वो लोकगीत है जो साधारण जन-मानस द्वारा गाये जाते हैं। इनमें जाति, ऊँचा-नीचा वर्ग, अमीर-गरीब को लेकर कोई बंधन नहीं होता और ना ही यह राजाश्रय पर निर्भर होता है। इस प्रकार के गीत सामाजिक स्तर पर स्वयं के सुख के लिये गाये जाते हैं।

2. **द्वितीय भागः** यह वो लोकगीत है, जो राजाश्रय के फलस्वरूप पनपे हैं और जिन्हें राजस्थान की कुछ विशेष लोकसंगीत जीवि जातियाँ गाती हैं। जिनमें ढोली, मिरासी, माँगणियार, दमामी आदि जातियाँ प्रमुख हैं। इन जातियों के कलाकार अपने राज्य के राजाओं और जागीरदारों की प्रषंसा में, वहाँ की भाषा में गीत गाते, यही गीत लोकगीत कहलाते हैं। इन्हें मुख्य तौर पर राजस्थान के रजवाड़ी गीत भी कहा जाता है। राजस्थान के मांड, सोरठ और देस इसके प्रत्यक्ष उदाहरण हैं।

3. **तृतीय भागः** इन गीतों के माध्यम से आदिवासी, भील, कंजर, सहरिया, गरासिया, नागा, संभाल तथा भारीया जाति के द्वारा गाए जाने वाले लोकगीतों का पृथक स्वरूप हमारे सम्मुख आता है। इस प्रकार राजस्थानी लोकगीतों का स्वरूप बहुत ही विस्तृत है। जहाँ एक ओर गाँव और शहरों में बसे हुए साधारण जनमानस जन्म से लेकर मृत्यु तक के संस्कार गीतों का चयन अपने हर महत्वपूर्ण कार्य करते हैं, तो वहीं दूसरी ओर इन्हीं लोकगीतों में थोड़ा शास्त्रीय रागों को मिश्रित कर के अर्थात् लोकगीतों के स्वरूप को थोड़ा परिष्कृत रूप देकर जब उन्हें रागों से सुसज्जित किया जाता है, तो यह रजवाड़ी लोकगीत कहलाते हैं।

राजस्थान की महत्वपूर्ण कला-संस्कृति इकाइयां

राजस्थान की प्रमुख कला संगमरमर के पत्थर से बनने वाली मूर्तियाँ है। संगमरमर पत्थर की मूर्ती कला का उद्गम स्थान अलवर जिले का किशोरी गाँव है। यहाँ के आदिगौड़ ब्राह्मण समाज ने मूर्तीकला को विकसित किया। भारत का सबसे बड़ा मूर्ती बाजार जयपुर में स्थित है। राजस्थान के मकराना (नागौर) में निकलने वाला संगमरमर पत्थर विश्व प्रसिद्ध है जिसे विश्व की कई संस्थाओं ने पुरातात्विक धरोहर के रूप में स्विकार किया है। विश्व प्रसिद्ध आगरा का ताजमहल मकराना के पत्थर से निर्मित है।

राजस्थान का सांगीतिक परिचय

14वीं शताब्दी से ही राजस्थान में सांस्कृतिक, साहित्यिक और राजनैतिक जागरण के साथ ही संगीत कला का सृजन भी आरंभ हो गया था। यहाँ के राजपूत राजा वीर योद्धा होने के साथ-साथ संगीत के प्रेमी भी थे। अतः संगीत व अन्य ललित कलाओं को यहाँ पर रजवाड़ों द्वारा अत्याधिक प्रश्रय प्राप्त हुआ। संगीत राजस्थान के राजदरवारों की शोभा था। यहाँ के कई राजा-महाराजा स्वयं भी श्रेष्ठ संगीतज्ञ थे।

राजस्थान का लोक-संगीत राजघरानों में फला व फूला। युद्ध भूमि में प्रस्थान करते समय यहाँ के शासक संगीत की वीर रसात्मक ध्वनियों से प्रेरित हुआ करते थे, युद्ध के आरंभ होने से पूर्व वाद्यों के तारों की झंकार तथा शंख व नगाड़ों की गर्जना से सम्पूर्ण वातावरण गूँज उठता था, जिससे उत्साहित होकर राजपूत योद्धा अपने प्राणों का मोह त्याग कर युद्ध-स्थल में लड़ने के लिए जूझ पड़ते थे। स्वाधीनता के लिये प्राण अर्पण करने वाले शूरवीर राजपूत और जौहर कर अपनी मर्यादा की रक्षा करने वाली राजपूत रमणियाँ यहीं की है। इन सभी वक्तव्यों से यह स्पष्ट होता है कि राजपूत राजाओं जितनी रूचि शस्त्रों व युद्ध में थी उतना ही उन्हें संगीत, सौन्दर्य तथा श्रृंगार प्रिय था। जिसके फलस्वरूप यहाँ संगीत, साहित्य आदि कलाओं का अत्याधिक विकास हुआ।

जयपुर राज्य प्रारम्भ से ही कलाओं का केन्द्र रहा है। यहाँ के राजाओं का संगीत व कला के क्षेत्र में योगदान अविस्मरर्णीय है। यहाँ संगीत के विकास हेतु एक विभाग जिसे गुणीजनखाना करते थे, उसकी स्थापना करी गयी। जहाँ गायन, वादन व नृत्य के उच्चकोटि के कलाकार नियुक्त थे, जिनमें सवाई जयसिंह के काल में “चाँद खाँ” एक कुशल व प्रसिद्ध ख्याल गायक हुए, इन्हें महाराजा सा ने “बुद्ध प्रकाश” की उपाधि से अलंकृत किया। महाराजा श्री सवाई जयसिंह जी ने साहित्य तथा संगीत की सरिताओं को अपने जीवन की अमूल्य घड़ियों से सिंचित कर प्रवाहित किया। इनकी संगीत को प्रेरित भी विशेष रूचि थी।

संगीत की दृष्टि से सवाई जयसिंह द्वितीय का शासन काल स्वर्ण युग था। इस काल में इनके राज्यक्रम में रजबअलि बीकानेर से, इमरतसैन सितरिये से मौहम्मद अलि और बहराम खां जैसे महान गायकों का आदि का नाम उल्लेखनीय है। जयपुर में संगीत की लोक एवं शास्त्रीय दोनों ही विधाओं का विकास हुआ है। जयपुर क्षेत्र का लोक-संगीत तथा मरूप्रदेश के लोक संगीत से प्रभावित है। यहाँ विभिन्न पर्वो एवं उत्सवों में भिन्न-भिन्न तरह के लोक गीत गाये जाते है। विवाहोत्सव

www.ignited.in

में सगाई, बधवा, रतजगा, तोरण, घोड़ी, बन्ना-बन्नी, वर निकासी, घुड़चढ़ी, चाक-भात, हथलेवा, कंकण-डोरा आदि अलग-अलग अवसरों पर मांगलिक गीत गाये जाते है। जोधपुर, बीकानेर जथा जैसलमेर की तर्ज पर जयपुर की मांड गायकी ने भी अपनी एक विशेष पहचान बनाई। जयपुर क्षेत्र के लोक नृत्यों में घूमर, चंग, डांडिया, भवाई, गूजरों का चेरी नृत्य, मीणों के नृत्य तथा कालबेलिया शैली के नृत्य का प्रमुखता से नाम लिया जाता है।

राजस्थान की राजधानी जयपुर कला व संस्कृति का घर है। इस नगर को त्योहारों व उत्सवों का नगर कहना भी कोई अतिशयोक्ति नही होगा। जब 'राज सवाई जयपुर' का संचालन राजप्रसाद से होता था, तो यहाँ का सांस्कृतिक वैभव और ऐश्वर्य वर्णनातीत था। आज भी जयपुर राजघराने के सदस्यों ने अपनी सांस्कृतिक परम्पराओं को मान्यता प्रदान कर अनमोल धरोहर के रूप में सहेज कर रखा है।

लोक गायन का प्राचीन इतिहास

संगीत मानव की सहज प्रवृत्ति है, संगीत विश्व के कण-कण में समाया हुआ है। मानव को जब शब्द का ज्ञान भी नहीं हुआ था, उस समय भी निःशब्द स्वर लहराता हुआ मानव के हृदय से निकल ही पड़ता था, अत्यन्त आनन्द के क्षणों में या विरह-वेदना के रूप में स्वर फूट पड़ते थे।

शब्दों से भी पहले स्वर ने जन्म लिया अथवा स्वर स्वतः ही उत्पन्न हुआ है। लोक के अंतरात में उद्भाशित सहज स्वर एवं शब्द की रचना ही लोक संगीत का रूप धारण कर लेती है, तथा सहज ही मनोरंजक एवं आनन्ददायनी धुनों की रचना स्वतः ही हो जाती है। लोक से तात्पर्य जन साधारण से है, वह चाहे गाँव का रहने वाला हो या शहर का, लोक जीवन में लोक संगीत का अर्थ उस सांस्कृतिक विद्या से लिया जाता है, जो आनन्द एवं उल्लास के अवसरों पर सहज और सामूहिक रूप से गा-बजाकर तथा नृत्य कर सभी का मनोरंजन कर सके। लोक संगीत को देशी संगीत भी कहा गया है।

लोकगीतों का उद्भव एवं विकास

लोकगीत उतना ही प्राचीन है जितना मानव का अस्तित्व। जब से मानव ने सभ्यता के प्रांगण में अंगड़ाइयां लेनी आरंभ की तभी से संगीत का श्री गणेश हुआ। लोकगीत स्वनिर्मित होते हैं। इन्हें आदिम मानव का सर्वांगीर्ण संगीत भी कहा जाता है। अतः भाषा की उत्पत्ति के साथ जब मनुष्य थोड़ा पारिवारिक एवं सामाजिक बना तभी से लोकगीतों का प्रादुर्भाव हुआ। विभिन्न प्रदेशों में उनके प्राकृतिक वातावरण के अनुसार बोल-चाल, रहन-सहन तथा वेश-भूषा का अन्तर लोकगीतों में भी परिलक्षित होता रहा है। जिस प्रदेश के वासी को जिस प्रकार का प्राकृतिक वातावरण मिला उसी के अनुसार उसका चाल-चलन, बातचीत आदि भी व्यक्त होने लगे। उन्हीं भावनाओं के आधार पर विभिन्न लोकगीतों की उत्पत्ति हुई।

लोकगीतों का सृजन बीज रूप में सर्वप्रथम एक व्यक्ति द्वारा होता है। लोकगीतों का सृजन करते समय लोक गायक लेखनी से अधिक अपने कण्ठ तथा जिह्वा का प्रयोग करता है। ये मनुष्य की मौखिक भाषाभिव्यक्ति है। अतः मौखिक परम्परा में जीवित रहने के कारण अन्य व्यक्तियों द्वारा समय समय पर संषोधित होता रहता है। मौखिकता लोकगीतों की उपलब्धि एवं प्रमाणिकता का एक विशिष्ट तत्व है। यह लोकगीतों को लोकप्रिय बनाने में भी सहायक सिद्ध हुई है। लोकगीतों का रचयिता तो अवश्य ही होता है लोकगीतों की संरचना (सृष्टि) में किसी एक व्यक्ति विशेष का ही हाथ नहीं होता। यह मानव समूह की एक सामूहिक अभिव्यंजना है। इन गीतों को अकेले गाने से कहीं अधिक समूह में या परिवार के साथ गाने का महत्व है। इससे सामूहिक भाव दृष्टिगोचर होता है। ये गीत समुदाय में रहकर पल्लवित होते रहते हैं। अतः यह लोक समुदाय की धरोहर है।

लोकगीतों व लोकनृत्यों में वाद्यों का महत्व

स्वर, लय एवं ताल में विकसित होने वाले संगीत का आनन्द बढ़ाने के लिये सदैव वाद्यों का प्रयोग होता आया है। वाद्य संगीत में संगीत के मूल तत्व स्वर तथा लय के द्वारा बिना किसी अन्य कला की सहायता के श्रोताओं को मधुमती भूमिका तक ले जाकर उसमें घण्टों रमाये रहने की शक्ति है। अन्य कलाएं वाद्यों के सहयोग के बिना अपनी कला का पूर्ण रूप से सौन्दर्य प्रदर्षित नहीं कर पाती। जैसे नर्तक को अपनी कला के प्रदर्शनार्थ वाद्यों का सहयोग नितान्त आवश्यक होता है। नृत्य और कण्ठ संगीत के अतिरिक्त नाट्शाला के लिये भी वाद्य संगीत का होना अत्यन्त आवश्यक होता है। यदि वाद्यों का सहयोग नाटक को न मिले तो वह निर्जीव सा प्रतीत होगा। लोक संगीत में भी वाद्यों का प्रयोग व महत्व शास्त्रीय संगीत की अपेक्षा बहुत अधिक होता है। विशेष रूप से ताल वाद्यों का जिसके अन्तर्गत घन तथा अवनद्ध वर्गों के वाद्य आते हैं। चाहे लोकगीत हो अथवा लोकनृत्य वाद्यों की आवश्यकता दोनों के लिये समान होती है। लोकगीतों व लोकनृत्यों को वाद्य एक प्रकार की सजीव चेतना से मुखरित करने का कार्य करते हैं और

www.ignited.in

यदि गायन व नृत्य में वाद्यों की संगत ना हो तो वे निष्प्राण से प्रतीत होगें।

लोक संगीत प्राकृतिक तथा स्वाभाविक रूप से मानव मन से स्वयं ही प्रस्फुटित होता है, इसे किसी प्रकार के व्याकरण अथवा शास्त्र के नियंत्रण की आवश्यकता नहीं होती। यह सरल भाषा, सरल काव्य एवं सरल धुनों में बद्ध होता है। लोक संगीत लोकारंजन एवं जनमानस की आन्तरिक भावनाओं की उत्पत्ति का प्रतीक है। लोक संगीत में शिक्षा का विशेष महत्व नहीं है, यह तो एक मौखिक परम्परा है। जिस प्रकार शिशु जन्म से ही हंसने-रोने तथा खाने-पीने की प्रक्रियाओं को जानता है। उसी प्रकार मानव मुख से प्रस्फुटित होता है। लोक संगीत द्वारा लौकिक आनंद का अनुभव किया जा सकता है। अर्थात् यह लौकिक आनंद को प्राप्त करने का पूर्णतः साधन माना गया है।

अर्थात् देश के सभी भागों में छोटे-बड़े लोग अपनी बोली में जिसे प्रेमपूर्वक रूचि के अनुसार गाकर, बजाकर तथा नृत्य कर अपना मन प्रसन्न कर सकते हैं, उसे देशी संगीत या लोक संगीत कहते हैं। लोक संगीत की यह सामान्य प्रवृत्ति है, कि वह लोक रूचि के अनुसार बदलती भी रहती है, क्योंकि उसमें रागों की भांति नियमों का विशेष बंधन नहीं है। अतः लोक संगीत सरल, सुलभ, बंधन रहित एवं परिवर्तनशील है, क्योंकि इसका मुख्याधार लोकरूचि है। विभिन्न क्षेत्रों की परम्पराएं, रीतिरिवाज़, आचार-विचार, तौर-तरीके, भाषा संरकार व्यवहार, मान्यताएँ, धार्मिक अनुष्ठान आदि की सामान्य प्रवृत्तियों के दर्शन वहां के लोक संगीत में होते हैं। प्रत्येक क्षेत्र के लोक संगीत में अपनी-अपनी मिट्टी का गुण होता है। इन प्रादेशिक गायन-शैलियों में कभी-कभी स्वरों की इतनी सुन्दर संरचना होती है कि वह शास्त्रीय गायन शैली (राग) का रूप धारण कर लेती है।

राजस्थान के लोक संगीत ने विभिन्न अवसरों, वार-त्योहारों तथा अनुरंजनों पर स्वस्थ्य लोकानुरंजन की सांस्कृतिक परम्पराओं को जीवन्त परिवेश दिया है। राजस्थान का लोक संगीत शास्त्रीय संगीत के बहुत निकट है। यहां की लोकधुनों में समाया हुआ है, और साथ ही सुरक्षित भी है। राजस्थान का संगीत यहाँ के प्रत्येक वर्ग के लोगों का अभिन्न अंग है, चाहे वह महलों में बसने वाले राजा-महाराजा हो, शहरों व नगरों के घरों में बसी हुई गृहणियाँ हो या फिर गाँव-देहातों में रहने वाले मजदूर, किसान व वर्ष के विभिन्न अवसरों पर यहां की जनता आनन्द में डूब कर गाती है, बजाती है, नाचती है। मेलों के अवसरों पर तो लोक जीवन गीतों के अथाह समुद्र में डूबता और उतरता रहता है। राजस्थानी लोक संगीत की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि इसमें वीर रस का बड़े ही सुन्दर एवं कलात्मक ढंग से चित्रण किया गया है।

राजस्थानी लोक गीतों में शास्त्रीय तत्व विषय के स्पष्टीकरण के लिए सर्वप्रथम शास्त्र शब्द को स्पष्ट करना आवश्यक है। सामान्यतः शास्त्र शब्द "शासनात् शास्त्रम" होता है अर्थात् शास्त्र का व्युत्पत्तिपरक अर्थ शासन करने वाला है। यह शासन मनुष्य को श्रेष्ठ कार्य में प्रवृत्त करने तथा दुष्कृतियों से निवृत्त करने वाला (विधि प्रतिषेध परक) होता है। जैसे हमारे प्राचीन वेद स्मृति, धर्मशास्त्र आदि ग्रन्थ मनुष्य को सत् पथ पर प्रवृत्त होने और असत् पथ से निवृत्त होने की प्रेरणा देते हैं। इसीलिये वे शास्त्र कहलाते हैं। संगीत का मुख्य प्रयोजन प्रवृत्ति निवृत्ति नहीं अपितु रसास्वादन या "सद्यः परनिवृत्तिः" है। संगीत के लिये शास्त्र शब्द शासनात् शास्त्रम् को लेकर प्रस्तुत नहीं हुआ है। अपितु शंसनात् शास्त्रम् को लेकर प्रवृत्त हुआ माना जा सकता है। शंसन का अर्थ है किसी गूढ़ तत्वों का शंसन या प्रतिवादन करने वाले गन्थ ही शास्त्र कहलाते हैं।

लोकगीतों का धरातल बड़ा ही रंग-बिरंगा, उन्मुक्त तथा जीवन की करवटों से आन्दोलित है। इन गीतों में मानव हृदय की प्राकृति भावना निहित है। लोकगीतों में मानव जीवन की उनके उल्लास, उमंगों, करूणा, रूदन और समस्त सुख-दुख की कहानी चित्रित होने के कारण इन गीतों परम्परा तरोताज़ा रहती है। लोकगीत दो शब्दों के संयोग से बना है, पहला 'लोक' एवं दूसरा 'गीत'। लोक शब्द के अनेक अर्थ हैं, मानवगण समुदाय, जन सामान्य संसार, साधारण चलन में पृथ्वी लोक, परिलोक, अध्याय-2 86 राजस्थान के राजघरानों में लोकगीत स्वर्गलोक, पाताललोक में अर्थात् लोक में नागरिक एवं ग्रामीण दोनों ही संस्कृतियों का समन्वय है। इसी प्रकार 'गीत' शब्द 'गै' धातु से 'क्तन्त' प्रत्यय लगाकर बनता है, जिसका अर्थ है 'गाया हुआ'। इन दोनों शब्दों को मिलाकर लोक संगीत बनता है। जिसका पूर्ण अर्थ है- लोक के द्वारा गाया हुआ अर्थ में ग्रहण किया जा सकता है। लोकगीतों में अधिकांशतः आदि-वासियों, ग्रामीणों, किसानों, घरेलु महिलाओं और पेशेवर लोक कलाकारों से सुन सकते हैं। सम्भवतः इसलिये विद्वानों ने इन्हें 'ग्राम गीत' के नाम से सम्बोधित किया।

उपसंहार

अध्ययन के पश्चात् निष्कर्ष रूप में यह कह सकते हैं कि हर काल (युग) में तथा हर परिस्थिति में इन राजपूत वंशजों ने राजस्थान के लोक संगीत के संरक्षण एवं विकास में अपना हर सम्भव योगदान दिया है, तथा राजस्थान में लोकगायन के विकास एवं संरक्षण में राजघरानों की भूमिका में प्राकल्पना सकारात्मक सिद्ध होती है। ब्रिटिश काल में यह भू-भाग 18 देशी राज्यों और दो सरदारियों में विभक्त किया गया था। इस कारण इसे "रजवाड़ा अर्थात् राजाओं की भूमि" भी कहते थे।

www.ignited.in

"राजस्थान" नाम का भी यही अर्थ है, निःसंदेह "राजस्थान" नाम स्वतंत्रता के बाद की देन है। इस प्रदेश विशेष के लिये राजस्थान शब्द प्रयुक्त करने का श्रेय कर्नल जेम्स टाड नामक सुप्रसिद्ध ब्रिटिश इतिहासकार को जाता है। जिन्होंने इस राज्य का नाम रजवाड़ा या राजस्थान दिया, जो राजाओं और उनके राज्यों का सूचक है। इनके द्वारा लिखित ग्रंथ "एनल्स एण्ड एन्टीक्विटीज आफ राजस्थान" (1829 ई. में प्रथम तथा 1832 ई. में द्वितीय भाग प्रकाशित हुआ) में इस नाम का व्यापक उल्लेख किया गया, जो लोकप्रिय बन गया।

संदर्भ

1. ओझा, डॉ. गौरीशंकर हीराचन्द्र, जोधपुर राज्य का इतिहास (प्रथम खंड)।
2. ईद, मोहम्मद, राजस्थान का सामाजिक एवं सांस्कृतिक इतिहास, रिसर्च पब्लिकेशन्स जयपुर।
3. खान, जाकिर, (2017), उम्मेद भवन होटर में अपने लंगा समूह संग लोक गीत प्रस्तुत करते हैं, जोधपुर, साक्षात्कार द्वारा प्राप्त जानकारी।
4. खां, मामे, (2016), प्रसिद्ध माँगणियार गायक, 'जवाहर कला केन्द्र', जयपुर, साक्षात्कार द्वारा प्राप्त विशेष जानकारी।
5. गुप्ता, मोहनलाल, (2004), जोधपुर संभाग का जिलेवार सांस्कृतिक एवं ऐतिहासिक अध्ययन, नवभारत प्रकाशन, जोधपुर।
6. ठाकुर, केशव, (2003), जेम्स टॉड कृत राजस्थान का इतिहास भाग-2, साहित्यागार, जयपुर।
7. तोमर, महिन्द्र सिंह, (2017), मेहरानगढ़ किले के पुस्तकालय के पुस्तकालय अध्यक्ष, जोधपुर, वार्तालाप द्वारा प्राप्त जानकारी।
8. त्रिपाठी, रामनरेश, (1953), कविता कौमुदी ग्रामगीत, नवनीत प्रकाशन लिमिटेड, मुम्बई।
9. नग्गड़ची, उमर, (2016), मेहरानगढ़ किले में नियुक्त नाग्गाड़ा वादक और जोधपुर राजघराने के राज नग्गाड़ची, जोधपुर, साक्षात्कार द्वारा प्राप्त जानकारी।
10. परिहार, डॉ. कालूराम, (2009), राजस्थान के लोकनृत्य और लोकनाट्य, रॉयल पब्लिकेशन, जोधपुर।
11. भटनागर, धर्मेन्द्र, (2004), वार्षिक सन्दर्भ ग्रन्थ, किरण प्रकाशन जयपुर।
12. मिश्र, डॉ. लालमणि, भारतीय संगीत वाद्य, भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली।

Corresponding Author

Bhavna Vijay Mankar*

Research Scholar